भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस

- प्राय: भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के पर्यायवाची के रूप में देखा जाता रहा है, परन्तु सच्चाई इससे अलग है। यह सही है कि भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस, राष्ट्रीय आंदोलन में एक प्रभावी संगठन रहा, परन्तु भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस का एक भाग हमेशा राष्ट्रीय आंदोलन से बाहर चलता रहा और समय के साथ कॉन्ग्रेस में भी बदलाव आया।
- उदारवादी चरण में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन में अधिक दूरियां थीं। उग्रवादी चरण में थोड़ी निकटता आयी, फिर गांधीवादी चरण में और भी निकटता आ गई, परन्तु किसी भी चरण में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस, राष्ट्रीय आंदोलन का पर्यायवाची नहीं बन सकी।

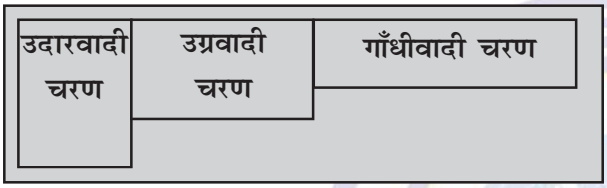

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना

- भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना दिसम्बर, 1885 में हुई। इसका प्रथम अधिवेशन दिसम्बर, 1885 में ही बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय में हुआ जिसमें संपूर्ण भारत के 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अखिल भारतीय स्तर पर यह भारतीय राष्ट्रवाद की पहली सुनियोजित अभिव्यक्ति थी।

कॉन्ग्रेस की स्थापना से संबंधित विवाद

■ **सुरक्षा कपाट की अवधारणा क्या है?**

- कॉन्ग्रेस एक ऐसी संस्था थी जो ब्रिटिश की पहल पर ब्रिटिश के द्वारा तथा ब्रिटिश हित में गठित की गई थी। इस विचार के प्रतिपादक लाला लाजपत राय थे।

■ **सुरक्षा कपाट की अवधारणा का आधार-**

- ब्रिटिश अधिकारी तथा ए.ओ. ह्यूम के मित्र विलियम वेडरबर्न के द्वारा लिखित ह्यूम की जीवनी में यह कहा गया कि ह्यूम को एक विद्रोह की आशंका थी, इसलिये वह सुरक्षा कपाट के तौर पर प्रतिनिध्यात्मक संस्था के रूप में कॉन्ग्रेस की स्थापना करना चाहते थे।

■ **सुरक्षा कपाट की अवधारणा के विरोधी मत-**

- कॉन्ग्रेस की स्थापना के संदर्भ में सेफ्टी वॉल्व का सिद्धांत तर्कसंगत नहीं जान पड़ता है क्योंकि इस व्याख्या को स्वीकार करने का अर्थ था- कॉन्ग्रेस जैसी संस्था की स्थापना को कुछ व्यक्तियों के षड्यंत्र का परिणाम मान लेना। किंतु इस धारणा को निम्नलिखित आधार पर चुनौती दी जा सकती है-
- 1950 के दशक में डफरिन के परिवार वालों के द्वारा उसके कुछ पत्रों का प्रकाशन किया गया, जिससे यह सूचना मिलती है कि शिमला में ए. ओ. ह्यूम डफरिन से मिला था लेकिन डफरिन ने कांग्रेस की स्थापना को गम्भीरता से नहीं लिया।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत अथवा लंदन की किसी भी लाइब्रेरी से इससे संबंधित कोई दस्तावेज प्राप्त नहीं हुआ।

तड़ित चालक का सिद्धांत

- गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों को आधार बनाकर एक तड़ित चालक सिद्धांत दिया गया है जो यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि ए. ओ. ह्यूम ने ब्रिटिश हित में भारतीय नेताओं का उपयोग नहीं किया, बल्कि भारतीय नेताओं ने ही भारतीय हित में ए. ओ. ह्यूम का उपयोग कर लिया।

प्रश्न: क्या सुरक्षा कपाट की अवधारणा कॉन्ग्रेस की स्थापना की वास्तविक व्याख्या करती है?

उत्तर: सुरक्षा कपाट की अवधारणा लाला लाजपत राय के द्वारा कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण पर प्रहार करने के क्रम में विकसित की गई थी। उनका कहना था कि एक संगठन के रूप में कॉन्ग्रेस की स्थापना एक अवकाश प्राप्त ब्रिटिश अधिकारी ए. ओ. ह्यूम के द्वारा ब्रिटिश वॉयसराय लॉर्ड डफरिन की सलाह पर ब्रिटिश हित में की गई थी।

अपने विचार के पक्ष में लाला लाजपत राय विलियम वेडरबर्न के द्वारा लिखी गई ए.ओ. ह्यूम की जीवनी का दृष्टांत देते हैं। इसमें सात गुप्तचरों के द्वारा प्रस्तुत सात दस्तावेज का जिक्र है जिनमें भारी विद्रोह की ओर संकेत है। परन्तु वेडरबर्न के विचार का खण्डन निम्नलिखित आधार पर किया जाता है-

1. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत अथवा लंदन की किसी भी लाइब्रेरी से इससे संबंधित कोई दस्तावेज प्राप्त नहीं हुआ।
2. स्वतंत्रता के पश्चात् डफरिन के प्रकाशित पत्रों से इस बात की पुष्टि नहीं हो पाती।

इसलिए सुरक्षा कपाट की अवधारणा का समर्थन करने का मतलब है भारत में राष्ट्रीय उत्थान को कम करके आँकना। वस्तुत: कॉन्ग्रेस की स्थापना को 1870 से 1880 के दशक में राष्ट्रवादी चेतना के उभार से जोड़कर देखा जाना चाहिए।

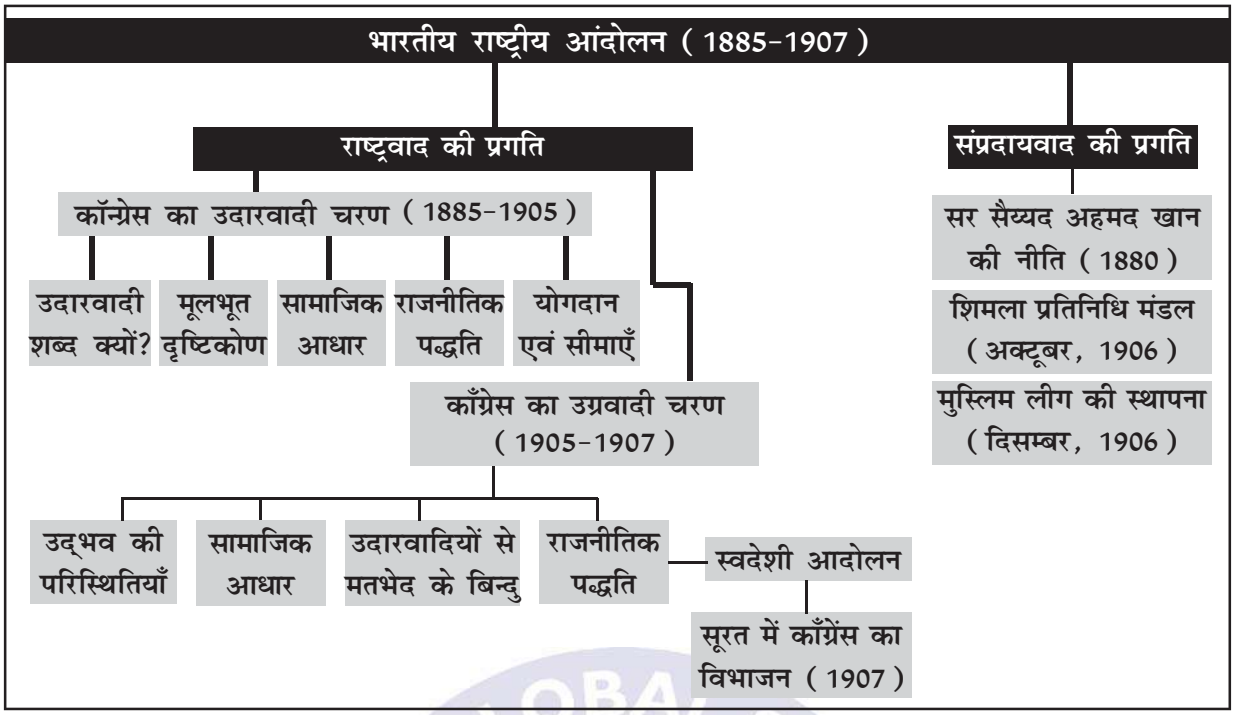

उदारवादी चरण (1885-1905 ई.)

■ **भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के आरंभिक चरण को उदारवादी चरण क्यों कहते हैं?**

- भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के आरंभिक चरण; यथा- 1885 से 1905 के बीच के काल को कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण की संज्ञा दी जाती है। 'उदारवादी' शब्द का प्रयोग निम्नलिखित कारणों से किया जाता है-

1. इस चरण में कॉन्ग्रेस पर जेम्स मिल तथा एडमण्ड बर्क जैसे उदारवादी ब्रिटिश चिंतकों के विचारों का प्रभाव था।
2. उदारवादी नेताओं के द्वारा संवैधानिक तरीकों को अपनाने पर बल दिया जाना। उनका नारा था- 'प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं'।
3. वे क्रमिक परिवर्तन में विश्वास करते थे, उग्र सुधार अथवा लंबी छलांग में नहीं।
4. वे संसदीय राजनीति में विश्वास करते थे, आंदोलन में नहीं।
5. उनके द्वारा अपनाई गई राजनीतिक पद्धति को लोकप्रिय प्रार्थना, प्रतिवेदन एवं स्मरण-पत्र का नाम दिया जाता है अर्थात् वे वर्ष में 3-4 दिनों के लिए एकत्रित होते, ब्रिटिश सरकारों को अपने पुराने प्रतिवेदनों की याद दिलाते तथा नये प्रतिवेदन प्रस्तुत करते, फिर आपस में विचार-विमर्श कर वापस लौट जाते। इस प्रकार, राजनीति उनके लिए मात्र अल्पकालिक पेशा थी।

■ **भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण का सामाजिक आधार:**

- **उदारवादी नेतृत्व में अभिजात्यीय तत्वों की प्रधानता-**
  1. उदाहरण के लिए, इनमें जमींदार, वकील, व्यापारी, पत्रकार, चिकित्सक, धर्मगुरु आदि शामिल थे। इसमें जनसामान्य का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर था।
  2. कॉन्ग्रेस के प्रतिनिधि मंडल में 90% हिंदू तथा केवल 6.5% मुसलमान शामिल थे।
  3. इन प्रतिनिधि मंडलों में सवर्णों की प्रधानता थी, इनमें 40% केवल ब्राह्मण थे।

■ **उदारवादी चरण का योगदान:-**

1. भारतीयों को आधुनिक राजनीति से परिचित करवाया।
2. उदारवादी राजनीति के दबाव में 1892 का अधिनियम (मतदान देने का अधिकार) पारित हुआ।
3. सबसे बढ़कर उदारवादी नेताओं ने धन की निकासी की अवधारणा देकर औपनिवेशिक अर्थ तंत्र की मीमांसा कर दी अर्थात् उन्होंने 'श्वेतों के अधिभार' की अवधारणा को गहरी चोट पहुँचाई।
4. धर्मनिरपेक्ष मूल्यों पर आधारित राजनीति को प्रोत्साहन मिला।

■ **उदारवादी चरण की सीमाएँ:-**

1. उदारवादी नेता संवैधानिक राजनीति में विश्वास करते थे, अर्थात् वे क्रमिक परिवर्तन में विश्वास करते थे, लंबी छलांग में नहीं।
2. उन्हें जनता की शक्ति में विश्वास नहीं था। वे महज शिक्षित भारतीयों को ही भारत का वास्तविक नागरिक मानते थे।
3. वे भारत की अवनति के लिए ब्रिटिश सरकार को नहीं,

वरन् भारत में कार्यरत ब्रिटिश अधिकारियों को उत्तरदायी मानते थे।

4. उदारवादी नेताओं का सामाजिक आधार अभिजात्य था तथा राजनीति उनके लिए महज अल्पकालिक पेशा थी।
5. उदारवादी चरण में कॉन्ग्रेस पर जमीदारों तथा पूँजीपतियों का प्रभाव था। अत: कॉन्ग्रेस के द्वारा किसानों तथा श्रमिकों के समर्थक कानून का विरोध किया गया। उदाहरण के लिए, कॉन्ग्रेस ने जहाँ एक तरफ 1885 ई. के बंगाल रैयतवाड़ी कानून का विरोध किया, वहीं 1900 ई० के पंजाब लैंड एलिएनेशन कानून का विरोध किया।

प्रश्न: कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण के सामाजिक आधार को स्पष्ट कीजिए तथा उस तथ्य पर प्रकाश डालिए कि इसने कॉन्ग्रेस की राजनीति को किस प्रकार प्रभावित किया?

उत्तर: अगर हम उदारवादी चरण में कॉन्ग्रेस की राजनीति पर निगाह डालते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि कॉन्ग्रेस का सामाजिक आधार उच्च-मध्य वर्ग ने तैयार किया था। कॉन्ग्रेस की पहली बैठक में एक बड़ी संख्या वकीलों की थी। उनके अतिरिक्त इसमें पत्रकार, व्यापारी, महाजन, धर्म गुरू सभी की उपस्थिति थी। कॉन्ग्रेस की उपर्युक्त सामाजिक संरचना ने निश्चय ही कॉन्ग्रेस की राजनीति पर अपना प्रभाव छोड़ा। इसे हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं-

1. चूँकि कॉन्ग्रेस के दिग्गज नेता अपने पेशे में सफल व्यक्ति थे, इसलिए राजनीति उनके लिए अल्पकालिक पेशा बनकर रह गई थी।
2. कॉन्ग्रेस के उदारवादी नेता अंग्रेजी भाषी बुद्धिजीवी थे, इसलिए सामान्य जनता से न तो उनका सम्पर्क था और न ही जनता की शक्ति में विश्वास था।
3. इनकी अधिकांश माँगें मध्य वर्ग के हितों के अनुकूल थीं।
4. कुछ अवसरों पर उन्होंने जमींदारों एवं महाजनों के पक्ष में सरकार के द्वारा किसानों की सुरक्षा के लिए बनाये गये कानूनों का भी विरोध कर दिया। उदाहरण के लिए, 1885 का बंगाल रैयतवाड़ी कानून तथा 1900 का पंजाब लैंड एलिएनेशन एक्ट आदि।

प्रश्न: क्या उदारवादी चरण में कॉन्ग्रेस का नेतृत्व अभिजात्य ही बना रहा तथा जनसामान्य के मुद्दों एवं समस्याओं को अपने से दूर रखा? इस कथन के संदर्भ में अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

प्रश्न: क्या कारण था कि 19वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते नरमदलीय अपनी घोषित विचारधारा एवं राजनीतिक लक्ष्यों के प्रति राष्ट्र के विश्वास को जगाने में असफल हो गये थे?

(UPSC-2017, 150 शब्द)

प्रश्न: नरमपंथियों की भूमिका ने किस सीमा तक व्यापक स्वतंत्रता आंदोलन का आधार तैयार किया? टिप्पणी कीजिए। **(UPSC-2021, 150 शब्द)**

उत्तर: 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना उस राजनीतिक जागृति का परिणाम थी जो 1870 एवं 1880 के दशक में उत्पन्न हुई थी। क्षेत्रीय स्तर पर पूना सार्वजनिक सभा से लेकर मद्रास महाजन सभा तक कई क्षेत्रीय संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी।

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस एक अखिल भारतीय संस्था के रूप में गठित हुई, जिसका उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं को एक समान मंच प्रदान करना था। इस रूप में कॉन्ग्रेस एक व्यापक राष्ट्रीय आकांक्षा से जुड़ गई। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारतीयों को आधुनिक राजनीति से अवगत करवाया। सबसे बढ़कर उन्होंने राष्ट्रहित से जुड़ी हुई कुछ महत्वपूर्ण माँगें उठाईं; यथा- प्रतिनिध्यात्मक सरकार की माँग, प्रेस की आजादी, सिविल सेवा का भारतीयकरण, भारतीय उद्योगों को सुरक्षा, भू-राजस्व की दर कम करना आदि।

फिर भी, उनकी सबसे महत्वपूर्ण माँग थी भारतीय अर्थव्यवस्था के शोषण को रोकना। इसलिए उदारवादी कॉन्ग्रेस को भारत में 'आर्थिक राष्ट्रवाद का जनक' माना जाता है। दादाभाई नौरोजी जैसे उदारवादी नेताओं ने धन की निकासी के मुद्दे को गंभीरता से उठाया।

परन्तु उपर्युक्त योगदान के बावजूद उनकी कुछ निश्चित सीमाएँ भी बनी रहीं, जो इस प्रकार हैं-

1. राजनीति उनके लिए अल्पकालिक पेशा बनी रही तथा कॉन्ग्रेस का अधिवेशन महज एक वार्षिक सम्मेलन बनकर रह गया।
2. फिर व्यवहार में कॉन्ग्रेस मुट्ठी भर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों का क्लब बनी रही।
3. सामान्य जनता से न तो उनका संपर्क था और न ही जनता की शक्ति में उनका विश्वास था।
4. उनके द्वारा अपनाई गई प्रार्थना, प्रतिवेदन और स्मरण-पत्र की पद्धति को उग्रवादी नेताओं ने खारिज कर दिया तथा उन्हें राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी।

इसलिए कॉन्ग्रेस के उदारवादी चरण में राष्ट्रीय आकांक्षा एवं वास्तविक उपलब्धि के बीच एक बड़ी खाई बनी रही।

उग्रवादी चरण (1905-1907 ई.)

- 19वीं सदी के अंत में उदारवादी राजनीति की आलोचना आरंभ हो गई थी। अरविंद घोष ने अपने एक पैम्पलेट 'न्यू लैंप फॉर द ओल्ड' में उदारवादी राजनीति की क्रमबद्ध

आलोचना प्रस्तुत की। फिर महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक एक उग्रवादी नेता के रूप में उभरे। उधर पंजाब के एक उग्रवादी नेता लाला लाजपत राय ने 1893 तथा 1900 के बीच होने वाले कॉन्ग्रेस के किसी भी अधिवेशन में हिस्सा नहीं लिया। इस प्रकार 1900 ई० तक कॉन्ग्रेस के अंदर, एक दूसरा गुट उभर चुका था।

उग्रवाद के उद्भव के कारण

■ **क्या भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उग्रवाद के उद्भव का कारण उदारवादी राजनीतिक विफलता में निहित था?**

- उग्रवाद के उद्भव का एक कारण उदारवादी राजनीति से मोहभंग अवश्य था, परंतु यह एकमात्र कारण नहीं था, अपितु उग्रवाद की जड़ समकालीन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में निहित थी।

1. औपनिवेशिक सरकार की प्रतिगामी आर्थिक नीतियों ने उग्रवाद के उदय का आधार तैयार किया। देश की आर्थिक स्थिति औपनिवेशिक शोषण की वजह से दयनीय हो रही थी। ग्रामीण गरीबी, दरिद्रता, प्राकृतिक प्रकोप, अकाल, महामारी आदि से जनता परेशान थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार संसाधनों के अधिकाधिक दोहन की नीतियों के क्रियान्वयन में लगी हुई थी।
2. बढ़ती हुई बेरोजगारी के प्रति शिक्षित युवाओं में प्रतिक्रिया हुई।
3. भारतीय सुधारकों यथा- दयानंद सरस्वती, बंकिम चंद्र चटर्जी तथा स्वामी विवेकानंद जैसे सुधारकों के द्वारा प्रेरित भारतीय गौरव की भावना का प्रभाव पड़ा।
4. लॉर्ड कर्जन की नीतियों की वजह से भी उग्रवादी विचारधारा का तीव्र प्रसार हुआ। कर्जन ने भारत विरोधी दृष्टिकोण अपनाया। उसने भारतीयों को संवैधानिक एवं प्रशासनिक अधिकार देने के बदले सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रयास किया। उसने भारतीयों को उच्च सरकारी पदों के अयोग्य करार दिया, कलकत्ता कॉरपोरेशन एक्ट (1899 ई.) द्वारा इसके सदस्यों की संख्या घटा दी, भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट (1904 ई.) के माध्यम से उच्च शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण बढ़ा दिया तथा ऑफिसियल सीक्रेट एक्ट (1904 ई.) के माध्यम से समाचार पत्रों पर प्रतिबंध आरोपित कर दिया। उसका सबसे विवादास्पद कार्य बंगाल विभाजन था जिसका मुख्य उद्देश्य बंगाल में राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना था। इस घटना ने बंगाल में उग्रवादी और सरकार विरोधी गतिविधियाँ तीव्र कर दी।
5. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य- 1896 में इथियोपिया के हाथों इटली की पराजय तथा 1905 में जापान के हाथों रूस की पराजय जैसी घटनाओं का प्रभाव।

उदारवादी तथा उग्रवादी नेताओं के बीच मतभेद के बिन्दु तथा कॉन्ग्रेस की राजनीति पर उसका प्रभाव

■ अगर हम उदारवादी एवं उग्रवादी नेताओं के बीच मतभेद के बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हैं, तो निम्नलिखित बिन्दु उभरकर आते हैं -

1. **सामाजिक संरचना:**- अगर उदारवादी नेता उच्च वर्ग का नेतृत्व करते थे, तो उग्रवादी निम्न-मध्य वर्ग का नेतृत्व करते थे।
2. **उद्देश्य:**- उद्देश्य के स्तर पर कोई विशेष मतभेद नहीं था क्योंकि उग्रवादी समूह से ही सही, उदारवादियों ने भी स्वराज्य अथवा स्वशासन का उद्देश्य अपना लिया था।
3. **दृष्टिकोण:**- उदारवादी नेताओं का विचार पाश्चात्यवादी था। उन्हें पाश्चात्य विचारधारा और पश्चिमी संस्थाओं में गहरा विश्वास था, वहीं उग्रवादी, उदारवादियों के द्वारा ब्रिटिश जनमत से की गई अपील को राष्ट्रीय अपमान मानते थे। उग्रवादियों को भारतीय अतीत एवं संस्कृति में गहरी आस्था थी। उनका मानना था कि तकनीकी के क्षेत्र में पश्चिमी देश, भारत से आगे हैं, परन्तु भारतीय संस्कृति, पश्चिमी संस्कृति की तुलना में कहीं अधिक समृद्ध है।
4. **राजनीतिक पद्धति:**- उदारवादियों की प्रार्थना, प्रतिवेदन और स्मरण-पत्र की पद्धति को उग्रवादी नेता राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा देते थे, बदले में उग्रवादियों का मुख्य बल 'निष्क्रिय प्रतिरोध' की पद्धति पर था। उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध के अंतर्गत स्वदेशी, बहिष्कार, स्वशासन तथा राष्ट्रीय शिक्षा पर बल दिया।

■ **प्रभाव** - उग्रवादी आंदोलन के बढ़ते हुए दबाव ने कॉन्ग्रेस की राजनीति को एक अलग प्रकार की दिशा दे दी। कॉन्ग्रेस ने प्रतिवेदन की राजनीति को छोड़कर आंदोलन की राजनीति को अपना लिया, जिसका परिणाम था 1905 में स्वदेशी आंदोलन की शुरूआत।

उग्रवादियों की सीमाएँ

उग्रवादी राजनीति की निम्नलिखित सीमाएँ थीं-

- यद्यपि उन्होंने अंतिम लक्ष्य के रूप में पूर्ण स्वराज को मान लिया था, किंतु इस लक्ष्य में स्पष्टता नहीं थी।
- उग्रवादी नेताओं ने हिंदू पुनरुत्थानवाद पर बल दिया।

हालाँकि, इस नारे के आधार पर अशिक्षित भारतीयों को कुछ हद तक संगठित किया जा सका, किंतु इसके कारण संप्रदायवाद को बल मिला।

- उन्होंने भारतीय किसानों की वर्गीय माँगों को नहीं उठाया। कभी भी कर-रोको आंदोलन को प्रोत्साहित नहीं किया। इसकी वजह थी कि बहुत सारे उग्रवादी नेता स्वयं जमींदार एवं भू-स्वामी थे। उनका तर्क यह था कि भारतीय किसानों का मुद्दा समाज को विभाजित कर सकता है।

प्रश्न: लॉर्ड कर्जन ने एक अनजान उत्प्रेरक की भूमिका निभाई तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक नई गति एवं ऊर्जा प्रदान कर दी?

उत्तर: यह भी इतिहास की एक विडम्बना है कि ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड कर्जन भारत में कॉन्ग्रेस को शांतिपूर्ण मौत देने की प्रतिबद्धता के साथ आया था, परन्तु इसके विपरीत उसने कॉन्ग्रेस को एक नई गति एवं ऊर्जा प्रदान कर दी तथा कॉन्ग्रेस की राजनीति को प्रतिवेदन से आंदोलन की ओर मोड़ दिया।

राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिए लॉर्ड कर्जन एक के बाद दूसरी प्रतिक्रियावादी नीति को अपनाता रहा। उदाहरण के लिए, 1899 का नगर निगम अधिनियम लाकर निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम करना, 1904 के कलकत्ता विश्वविद्यालय अधिनियम के आधार पर कलकत्ता विश्वविद्यालय पर नियंत्रण बढ़ाना और सबसे बढ़कर उसने 1905 में बंगाल विभाजन का कदम उठाकर राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर कर दिया।

कर्जन के द्वारा उठाये गये उपर्युक्त कदमों का परिणाम हुआ कॉन्ग्रेस के अंदर उग्रवादियों का मजबूत होना। अब तक उग्रवादी महज विचारों तक ही सीमित रहे थे, परन्तु बंगाल विभाजन के पश्चात् उन्हें क्रियान्वयन का अवसर मिला। इसी का परिणाम था स्वदेशी आंदोलन, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन की तीव्रता को बढ़ा दिया।

इस प्रकार, कर्जन ने भारतीय राष्ट्रवाद में अनजान उत्प्रेरक की भूमिका निभाई।

स्वदेशी आन्दोलन

- भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में 20वीं सदी का उदय, स्वदेशी आन्दोलन के संगठन से जुड़ा है। स्वदेशी आन्दोलन का प्रबल केन्द्र बंगाल रहा, जहाँ से यह देश के अन्य हिस्सों में प्रसारित हुआ। इस आन्दोलन के दौरान पहली बार ग्रामीण एवं शहरी छात्र, युवक, महिलाएँ सभी सक्रिय राजनीति में आए। स्वदेशी आन्दोलन की विशेषता यह थी कि, इसका दायरा महज राजनीति तक सीमित नहीं था। कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान, उद्योग एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी इस आन्दोलन का असर पहुँचा।
- वस्तुत: स्वदेशी आन्दोलन बंगाल विभाजन के विरोध में एक आन्दोलन के रूप में पैदा हुआ। लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर एक व्यापक असंतोष को जन्म दिया। यद्यपि घोषित रूप में लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का कारण प्रशासनिक पुनर्व्यवस्थापन को बताया, किंतु उसका वास्तविक उद्देश्य भारत में मुस्लिम जनसंख्या को राष्ट्रीय आंदोलन से बाहर खींचकर राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करना था। किंतु स्वयं लॉर्ड कर्जन को यह अनुमान नहीं था कि बंगाल विभाजन इतना व्यापक एवं उग्र प्रतिरोध को जन्म देगा। बंगाल विभाजन की प्रतिक्रिया में स्वदेशी आंदोलन की शुरूआत हुई। 16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल के विभाजन का क्रियान्वयन हुआ तथा इस दिन बंगाल के राष्ट्रवादियों ने एकता के प्रतीक के रूप में रक्षाबंधन का त्यौहार मनाया।
- **बंगाल विभाजन के खिलाफ प्रारंभ हुए आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन में तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं-**

1. **रचनात्मक स्वदेशी अथवा आत्मशक्ति:-** आंदोलनकारी नेताओं का यह मानना था कि सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने के लिये जनता का प्रत्येक मामले में स्वावलंबी होना आवश्यक है क्योंकि स्वावलंबन एवं आत्मनिर्भरता का प्रश्न राष्ट्रीय स्वाभिमान, आदर एवं आत्मविश्वास के साथ जुड़ा है। रवींद्रनाथ टैगोर 1904 ई. से लेख लिखकर लोगों को इस दिशा में प्रोत्साहित कर रहे थे। अत: आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु स्वदेशी उद्योग-धंधे, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान आदि स्थापित करने की दिशा में व्यापक प्रयास प्रारंभ हो गए। 1905 ई. में प्रथम औद्योगिक सम्मेलन रोमेश चन्द्र दत्त की अध्यक्षता में बनारस में आयोजित किया गया। पी.पी. राय ने प्रसिद्ध बंगाल केमिकल स्वदेशी स्टोर खोला। अश्विनी कुमार दत्त ने अपनी संस्था 'स्वदेश बांधव समिति' द्वारा बारीसाल में गाँवों के विकास का कार्यक्रम चलाया। राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए सतीश चंद्र मुखर्जी ने 'डॉन सोसायटी' की स्थापना की।
2. **राजनीतिक उग्रवाद:-** अरविंद घोष तथा बिपिन चंद्र पाल राजनीतिक उग्रवाद पर बल दे रहे थे। अरविंद घोष ने ही निष्क्रिय प्रतिरोध की अवधारणा रखी, जिसमें स्वदेशी, बहिष्कार, स्वशासन तथा राष्ट्रीय शिक्षा के लक्ष्य शामिल थे।
3. **क्रांतिकारी राष्ट्रवाद:-** प्रमथ मित्र तथा बारीन्द्र कुमार घोष जैसे युवा नेताओं के द्वारा क्रांतिकारी राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन दिया जा रहा था। इनके द्वारा 1902 ई. में बंगाल

में एक क्रांतिकारी संगठन 'अनुशीलन समिति' की स्थापना की गई।

स्वदेशी आंदोलन का विस्तार

- यह बंगाल से आरंभ हुआ तथा बंगाल से इसका विस्तार पंजाब, महाराष्ट्र एवं दक्षिण में मद्रास में हुआ। आंध्र प्रदेश में यह एक नए नाम से प्रचलित हुआ। यहाँ इसे **'वंदे मातरम्'** आंदोलन के नाम से जाना गया।
- बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के एक प्रेरक तत्व स्वामी विवेकानंद रहे थे, परंतु धीरे-धीरे बंगाल पर तिलक के जुझारू राष्ट्रवाद का प्रभाव पड़ने लगा था। परंतु बंगाल में स्वदेशी आंदोलन का मौलिक स्वर आर्थिक ही रहा था।
- महाराष्ट्र भी स्वदेशी आंदोलन का महत्वपूर्ण गढ़ था। यहाँ स्वदेशी आंदोलन को संगठित करने का कार्य बाल गंगाधर तिलक ने किया। परंतु जहाँ बंगाल के आंदोलन का मुख्य स्वर आर्थिक था, वहीं महाराष्ट्र के आंदोलन का स्वर मुख्यतया धार्मिक था। तिलक ने धार्मिक प्रतीकों का सहारा लेकर लोगों को संगठित करने का काम किया।
- तिलक ने 1896 में गौरक्षा समिति का गठन किया तथा इस मुद्दे पर लोगों को संगठित करने का प्रयास किया। फिर 20वीं सदी के आरंभ में उन्होंने गणेश उत्सव और शिवाजी उत्सव जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया।

योगदान

1. पहली बार कॉन्ग्रेस, प्रतिवेदन से आंदोलन की राजनीति की ओर मुड़ी।
2. स्वदेशी आंदोलन के मध्य वे तमाम प्रवृत्तियां विकसित हुईं जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में अपना प्रभाव बनाए रखा; यथा- स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा को प्रोत्साहन। इसने आगे गांधीवादी आंदोलन का भी मार्ग तैयार कर दिया।
3. स्वदेशी आंदोलन के दबाव में सरकार ने 1911 में बंगाल के विभाजन को रद्द कर दिया।
4. देशी उद्योग के रूप में बंगाल में प्रफुल्ल चंद्र राय के द्वारा 'बंगाल केमिकल्स' तथा मद्रास में चिदंबरम् पिल्लई के द्वारा एक 'नेविगेशन कंपनी' की स्थापना की गई। बहिष्कार की नीति के कारण भी देशी उद्योगों को प्रोत्साहन मिला तथा इसके अतिरिक्त बैंकिंग तथा बीमा क्षेत्र में भी भारतीय पूंजी का विस्तार हुआ।
5. देशी भाषाओं को प्रोत्साहन मिला क्योंकि उग्रवादी नेताओं और क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों के द्वारा उग्र विचारों को प्रोत्साहन देने के लिए देशी समाचार पत्रों का प्रकाशन किया गया।
6. देशी कला के विकास में भी इस आंदोलन का योगदान रहा। अवनींद्रनाथ टैगोर के द्वारा मुगल चित्रकला को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया।

सीमाएं

1. स्वदेशी आंदोलन के नेता मुस्लिमों का समर्थन प्राप्त करने में असफल रहे। इसका महत्वपूर्ण कारण मुस्लिमों के द्वारा बंगाल विभाजन का समर्थन किया जाना था। इस आंदोलन में हिंदू धार्मिक प्रतीकों के इस्तेमाल आदि ने भी मुसलमानों को स्वदेशी आंदोलन से अलग रखा।
2. स्वदेशी आंदोलन बंगाल के किसानों को आकर्षित नहीं कर सका क्योंकि नेताओं ने प्रगतिशील कृषि कार्यक्रमों को नहीं अपनाया।

स्वदेशी आन्दोलन का समाप्त होना

- स्वदेशी आन्दोलन के खतरे को सरकार भाँप गई थी। अत: साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन के रूप में इसे शक्तिशाली दमनकारी कदम का शिकार होना पड़ा।
- कॉन्ग्रेस में उभर रहे आपसी मतभेद ने उग्रवादियों तथा उदावादियों के मध्य की खाई इतनी गहरी कर दी कि 1907 में कॉन्ग्रेस का विभाजन हो गया।
- स्वदेशी आन्दोलन के पास कोई प्रभावी संगठन का नहीं होना।

उदारवादी एवं उग्रवादी दल के बीच मतभेद

- स्वदेशी आंदोलन के मध्य ही उदारवादी एवं उग्रवादी नेताओं के बीच मतभेद उभरकर आये। मतभेद के निम्नलिखित बिंदु थे -

1. उदारवादियों का मानना था कि बंगाल का विभाजन महज बंगाल की समस्या है। अत: स्वदेशी आंदोलन को बंगाल तक ही सीमित होना चाहिए, किंतु उग्रवादी बंगाल विभाजन की समस्या को अखिल भारतीय समस्या मानते थे तथा इसका विस्तार संपूर्ण देश में करना चाहते थे।
2. उदारवादी बहिष्कार की नीति को केवल विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक ही सीमित रखना चाहते थे, जबकि उग्रवादी इसे अन्य क्षेत्रों में भी लागू करना चाहते थे।

सूरत का विभाजन

- 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में उग्रवादियों ने कॉन्ग्रेस अध्यक्ष के रूप में तिलक का नाम प्रस्तावित किया, किंतु मेहता-गोखले गुट ने दादा भाई नौरोजी का नाम प्रस्तावित कर उग्रवादियों को मात दे दी तथा उग्रवादी, दादा भाई नौरोजी की उम्मीदवारी का विरोध नहीं कर सके, किंतु उग्रवादी समूह के दबाव में कॉन्ग्रेस को 'स्वराज', 'स्वदेशी', 'बहिष्कार' और राष्ट्रीय शिक्षा जैसे चार भारी-भरकम प्रस्ताव स्वीकार करने पड़े।

- जब कलकत्ता अधिवेशन से उदारवादी नेता लौट रहे थे तो अपने को अपमानित महसूस कर रहे थे। अब 1907 का कॉन्ग्रेस अधिवेशन नागपुर में होने वाला था, चूँकि नागपुर उग्रवादियों का गढ़ था, इसलिए गोखले-मेहता गुट ने अंतिम समय में अधिवेशन का स्थान नागपुर की जगह सूरत को तय किया।
- उस समय उग्रवादी गुट में यह अफवाह चरम बिंदु पर थी कि उग्रवादियों ने कलकत्ता अधिवेशन में जो रियायतें प्राप्त की हैं, उदारवादी नेता सूरत अधिवेशन में उन्हें समाप्त करने वाले हैं, इसलिए उग्रवादी प्रत्येक स्थिति में अपने अध्यक्ष को चाहते थे।
- अत: एक बार फिर उन्होंने तिलक का नाम प्रस्तावित किया, किंतु मेहता-गोखले गुट ने तभी एक उदारवादी नेता रास बिहारी घोष का नाम मनोनीत किया, किंतु उग्रवादियों ने इसे स्वीकार नहीं किया तथा कॉन्ग्रेस पंडाल में बलवे शुरू हो गए। इसकी परिणति सूरत के विभाजन के रूप में हुई अर्थात् उदारवादियों ने एक नया संविधान लाकर उग्रवादियों को कॉन्ग्रेस से बाहर कर दिया।

सम्प्रदायवाद की प्रगति

- सम्प्रदायवाद एक आधुनिक विचारधारा है तथा ब्रिटिश शासन के अंतर्गत इसे विकसित होने का पूरा अवसर मिला। सम्प्रदायवाद यह मानकर चलता है कि एक विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक हित दूसरे धार्मिक सम्प्रदाय के उन हितों से पृथक होते हैं। फिर भी, इसे सम्प्रदायवाद का उदारवादी चरण मान सकते हैं।
- परन्तु जब सम्प्रदायवाद ऐसा मानने लगता है कि एक विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित दूसरे सम्प्रदाय के उन हितों के विरोधी होते हैं, तो सम्प्रदाय उग्र चरण में पहुंच जाता है।

भारतीय राजनीति में सम्प्रदायवाद को प्रेरित करने वाले कारक

1. 19वीं सदी के **समाज एवं धर्मसुधार आंदोलन** से पुनरूत्थानवादी प्रवृत्ति को बल मिला तथा सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन मिला।
2. **ब्रिटिश इतिहास लेखन एवं जनगणना:**- जेम्स मिल जैसे ब्रिटिश विद्वान के द्वारा भारतीय इतिहास के हिन्दू काल और मुस्लिम काल में विभाजन से सम्प्रदायवाद को बल मिला।
3. **सर सैय्यद अहमद खान की अवसरवादी नीति** तथा उनके द्वारा यह घोषित किया जाना कि हिन्दू एवं मुसलमान दो पृथक कौम हैं। वस्तुत: 1857 के विद्रोह में हिंदू और मुसलमान दोनों ने मिल-जुलकर अपनी भूमिका निभाई थी, किंतु ब्रिटिश ने 1857 के विद्रोह को मुस्लिम षड्यंत्र का परिणाम करार दे दिया। फिर ब्रिटिश ने इस विद्रोह के पश्चात् मुस्लिम विरोधी नीति अपनायी। परिणामत: शिक्षा एवं सरकारी सेवा में मुस्लिम पहले से ही पिछड़े हुए थे, वे अब और भी पिछड़ते चले गए।

- इस बात को सबसे पहले महसूस किया सर सैयद अहमद खान ने। सर सैयद अहमद खान, जो 1870 के दशक में राष्ट्रवादी रहे थे, 1880 के दशक में आकर राज पक्षधर हो गए क्योंकि उन्होंने ऐसा महसूस किया कि ब्रिटिश समर्थन के बिना मुस्लिम समाज का उत्थान संभव नहीं है।
- अगर एक दृष्टि से देखा जाए तो मुस्लिम संप्रदायवाद की आधारभूत संरचना सर सैयद अहमद खान ने ही निर्मित कर दी। उन्होंने भारत में एक प्रतिनिध्यात्मक संस्था के विकास को हतोत्साहित किया क्योंकि उनका मानना था कि इन संस्थाओं का विकास मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हित में नहीं है।

शिमला प्रतिनिधि मण्डल

- अक्टूबर, 1906 में नवाब सलीमुल्लाह एवं आगा खाँ के अधीन 35 कुलीन मुसलमानों का प्रतिनिधिमंडल वायसराय लॉर्ड मिंटो से मिला तथा उसके समक्ष माँग रखी कि साम्राज्य में अर्पित की गई सेवा के बदले हमें जनसंख्या से अधिक मताधिकार मिले।

मुस्लिम लीग का गठन

- दिसम्बर, 1906 ई. में ढाका में आगा खाँ, ढाका के नवाब सलीमुल्लाह और नवाब मोहसिन-उल-मुल्क के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का गठन हुआ। वकार-उल-मुल्क मुस्लिम लीग के पहले अध्यक्ष थे। मुस्लिम लीग ने आरंभ में ब्रिटिश राज पक्षधर नीति अपना ली।

■■■